ॐ नमः सिद्धेभ्य

जैन धर्म इतिहास पर मुग़ल काल प्रभाव्

भारतीय संभ्यता का जैन धर्म सबसे प्राचीन धर्म है । प्राचीन युगो में जैन धर्म को श्रमणों का धर्म कहा जाता रहा है। वेदों में उल्लेख है की जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ ही प्रथम भगवान शिव है । जैन धर्म के 22वें तीर्थंकर अरिष्ट नेमिनाथ भगवान कृष्ण के चचेरे भाई थे। जैन धर्म ने कृष्ण को उनके त्रैसष्ठ शलाका पुरुषों में शामिल किया है, जो बारह नारायणों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि अगली चौबीसी में भगवन कृष्ण जैनियों के प्रथम तीर्थंकर होंगे। ई पू आठवीं सदी में 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए , जिनका जन्म काशी में हुआ था। काशी के पास ही 11वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म भी हुआ था। इन्हीं के नाम पर सारनाथ शहर है।

भगवान पार्श्वनाथ तक यह परंपरा कभी संगठित रूप में अस्तित्व में नहीं आई। पार्श्वनाथ क्षेत्र से ही पार्श्वनाथ संप्रदाय की शुरुआत हुई और इस परंपरा को एक संगठित रूप मिला। भगवान महावीर भी पार्श्वनाथ संप्रदाय से ही थे। जैन धर्म में श्रमण संप्रदाय का पहला संप्रदाय पार्श्वनाथ ने ही खड़ा किया । ये पार्श्वनाथ श्रमण, वैदिक परंपरा के विरुद्ध थे। यही से जैन धर्म ने अपना अगल अस्तित्व गढ़ना शुरू कर दिया था। महावीर तथा बुद्ध के काल में ये श्रमण कुछ बौद्ध तथा कुछ जैन हो गए। इन दोनों ने अलग-अलग अपनी शाखाएं बना ली।

तीर्थंकर भगवान महावीर : ईपू 599 में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने तीर्थंकरों के धर्म और परंपरा को सुव्यवस्थित रूप दिया। कैवल्य ज्ञान का राजपथ सुनिश्चित किया। संघ-व्यवस्था का संगठन किया:- मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका। यही उनका चतुर्विघ संघ कहलाया। भगवान महावीर ने 72 वर्ष की आयु में देह त्याग किया। भगवान महावीर के काल में ही विदेहियों और श्रमणों की इस परंपरा का नाम जिन (जैन) पड़ा, अर्थात जो अपनी इंद्रियों को जीत लें वही जैन है ।भगवान महावीर के पश्चात इस परंम्परा में कई मुनि एवं आचार्य भी हुये है, जिनमें से प्रमुख हैं

आचार्य गौतम गणधर (607-515 B.C.)

जैन परम्परा के ग्रन्थों में भगवान महावीर के शिष्य परम्परा में ग्यारह गणधरों का वर्णन प्राप्त होता है।समवायांग सूत्र और तिलोय पण्णत्ति आदि जैन ग्रंथों में इनके विशेष विवरण प्राप्त होते हैं। संक्षेप में इन का परिचय इस प्रकार है-

आचार्य इन्द्रभूति - इनद्रभूति का जन्म ईसा पूर्व 607 ईस्वी मे मगध देश के ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इन्द्रभूति गौतम 500 शिष्यों के साथ भगवान महावीर के समवसरण मे उनके शिष्य बने थे। फिर लगभग 40 वर्षो तक वे भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य बनकर रहे। जैन परम्परा मे गौतम गणधर और महावीर के बीच अनेक सिद्धांतो पर जो चर्चा हुई है वही जैन सिद्धांतो को जानने का प्रमुख आधार है इसलिए यह कहा गया है कि अर्थ के रूप मे भगवान महावीर ने जो कुछ भाव व्यक्त किया उसे शब्दों के रूप मे गौतम गणधर ने सुरक्षित रखा है गौतम गणधर को भगवान महावीर के निर्वाण - दिवस पर ही केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। उन्हो ने भगवान महावीर के संघ का संचालन किया और जैन धर्म का सम्पूर्ण देश मे प्रचार किया। ईस्वी पूर्व 515 में 92 वर्ष की आयु मे राजगृह मे इन्द्रभूति गौतम को निर्वाण प्राप्त हुआ।

आचार्य कुन्दकुन्द :

गौतम गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्द को संपूर्ण जैन शास्त्रों का एक मात्र ज्ञाता माना गया है। दिगम्बरों के लिए इनके नाम का शुभ महत्त्व है और भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद पवित्र स्तुति में तीसरा स्थान है-

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।

मंगलं कुन्दकुंदाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलं॥

आचार्य कुन्दकुन्द तत्त्वार्थसूत्र के रचियता आचार्य उमास्वामी के गुरु थे।

कुन्दकुन्दाचार्य मूलसंघ के प्रधान आचार्य थे। तपश्चरण के प्रभाव से अनेक अलौकिक सिद्धियाँ इन्हें प्राप्त थीं। जैन परंपरा में इनका बड़े आदर से उल्लेख होता है। शास्त्रसभा के आरंभ में मंगल भगवान वीर के साथ-साथ मंगल कुदकुंदाद्यो कहकर इनका स्मरण किया जाता है जिससे जैन शासन में इनक महत्व का पता चलता है।

इन्होंने सर्वप्रथम जैन-आगम-सम्मत पदार्थों का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया है। इनके सभी उपलब्ध ग्रंथ प्राकृत में हैं। इनकी विशेषता रही है कि इन्होंने जैन मत का स्वकालीन दार्शनिक विचारधारा के आलोक में प्रतिपादन किया है, केवल जैन आगमों का पुन:प्रवचन नहीं किया। इनके विभिन्न ग्रंथों में ज्ञान , दर्शन और चरित्र का निरूपण मिलता है। इन्होंने एक एक विषय का निरूपण करने के लिए स्वतंत्र ग्रंथ लिखे जिन्हें पाहुड़ कहते हैं। इनके ८४ पाहुड़ों का उल्लेख जैन वाङ्मय में मिलता है। इनके मुख्य ग्रंथ निम्नलिखित हैं:

1 प्रवचनसार, २ समयसार, ३ पंचास्तिकाय, ४ नियमसार, ५ बारस अणुवेक्खा ६ दसंण पाहुड़,

७ चारित्तपाहुड़, ८ बोध पाहुड़ , ९ मोक्ख पाहुड़ , १० शील पाहुड़ ११ रयणसार , १२ सिद्ध भक्ति १३ मूलाचार (वट्टकेर)।

आचार्य उमास्वामी (200 A.D.)

तत्वार्थ सूत्र -(मोक्ष शास्त्र एक श्रावक के घर आचार्य उमा स्वामी जी आहार हेतु पधारे !वहां उसने अपनी दीवार पर 'दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष मार्ग' लिखा था!उमा स्वामी जी ने उसके आगे 'सम्यग 'लगा कर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्क्षमार्ग: लिख कर ,इस ग्रन्थ का प्रथम सूत्र लिपिबद्ध किया ! भक्त घर आने पर उमा स्वामी जी के पास जाकर पूछते है की हमें विस्तार से मोक्ष मार्ग बताइये !तब आचार्य उमास्वमी जी ने उस भक्त को मोक्ष मार्ग बताते हुए इस ग्रन्थ की १० अध्यायों में रचना करते है !

इस ग्रन्थ को मोक्ष शास्त्र भी कहते है! इस ग्रन्थ में आचार्य उमास्वामी जी द्वारा सात तत्वों का विस्तृत वर्णन १० अध्यायों में ३५७ सूत्रों के माध्यम से,संस्कृत में प्रथम बार किया गया है!इससे पूर्व के समस्त जैन ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध किये गए है!सूत्र का मतलबकम शब्दों में अनेक अर्थ समाविष्ट करने से है! यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगंबर जैन , दोनों ही मुख्य परम्पराओ में सामान रूप से मान्य है , कुछ सूत्र एक में ही समावित करने के कारण से श्वेताम्बर आमना में ३४४ सूत्र माने गए है !

१-प्रथम अध्याय में मोक्ष मार्ग का उल्लेख करते हुए ,सम्यग्दर्शन के भेद,सात तत्वों ,सम्यग्ज्ञान के भेद, और सात नयों के भेद से विस्तारपूर्वक परिचय ३३ सूत्रों में कराया है!

आचार्य भद्रबाहु- अंतिम श्रुत केवली (433-357)

आचार्य भद्रबाहु ने अपने ज्ञान के बल पर जान लिया था कि उत्तर भारत में १२ वर्ष का भयंकर अकाल पड़ने वाला है इसलिए उन्होंने सभी साधुओं को निर्देश दिया कि इस भयानक अकाल से बचने के लिए दक्षिण भारत की ओर विहार करना चाहिए। आचार्य भद्रबाहु के साथ हजारों जैन मुनि (निर्ग्रन्थ) दक्षिण की ओर वर्तमान के तमिलनाडु और कर्नाटक की ओर प्रस्थान कर गए और अपनी साधना में लगे रहे। परन्तु कुछ जैन साधु उत्तर भारत में ही रुक गए थे। अकाल के कारण यहाँ रुके हुए साधुओं का निर्वाह आगमानुरूप नहीं हो पा रहा था इसलिए उन्होंने अपनी कई क्रियाएँ शिथिल कर लीं , जैसे कटि वस्त्र धारण करना , ७ घरों से भिक्षा ग्रहण करना , १४ उपकरण साथ में रखना आदि। १२ वर्ष बाद दक्षिण से लौट कर आये साधुओं ने ये सब देखा तो उन्होंने यहाँ रह रहे साधुओं को समझाया कि आप लोग पुनः तीर्थंकर महावीर की परम्परा को अपना लें पर साधु राजी नहीं हुए और तब जैन धर्म में दिगंबर और श्वेताम्बर दो सम्प्रदाय बन गए।

तीर्थंकर महावीर के समय तक अविछिन्न रही जैन परंपरा ईसा की तीसरी सदी में दो भागों में विभक्त हो गयी :दिगंबर और श्वेताम्बर। मुनि प्रमाणसागर जी ने जैनों के इस विभाजन पर अपनी रचना 'जैनधर्म और दर्शन' में विस्तार से लिखा है कि

दिगम्बर दिगम्बर साधु (निर्ग्रन्थ) वस्त्र नहीं पहनते है। नग्न रहते हैं। दिगम्बर मत में तीर्थकरों की प्रतिमाएँ

जैन धर्म में आपसी मतभेद : अशोक के अभिलेखों से यह पता चलता है कि उनके समय में मगध में जैन धर्म का प्रचार था। लगभग इसी समय , मठों में बसने वाले जैन मुनियों में यह मतभेद शुरू हुआ कि तीर्थंकरों की मूर्तियां कपड़े पहनाकर रखी जाए या नग्न अवस्था में। इस बात पर भी मतभेद था कि जैन मुनियों को वस्त्र पहनना चाहिए या नहीं। आगे चलकर यह मतभेद और भी बढ़ गया। ईसा की पहली सदी में आकर जैन धर्म को मानने वाले मुनि दो दलों में बंट गए। एक दल श्वेतांबर कहलाया , जिनके साधु सफेद वस्त्र (कपड़े) पहनते , और दूसरा दल दिगंबर कहलाया जिसके साधु नग्न (बिना कपड़े के) ही रहते थे।

श्वेतांबर और दिगंबर का परिचय : भगवान महावीर ने जैन धर्म की धारा को व्यवस्थित करने का कार्य किया, लेकिन उनके बाद जैन धर्म मूलत: दो संप्रदायों में विभक्त हो गया: श्वेतांबर और दिगंबर । दोनों संप्रदायों में मतभेद केवल दार्शनिक सिद्धांतों से ज्यादा चरित्र को लेकर है। दिगंबर आचरण पालन में अधिक कठोर हैं जबकि श्वेतांबर कुछ उदार हैं। श्वेतांबर संप्रदाय के मुनि श्वेत वस्त्र पहनते हैं जबकि दिगंबर मुनि निर्वस्त्र रहकर साधना करते हैं । यह नियम केवल मुनियों पर लागू होता है। दिगंबर संप्रदाय मानता है कि मूल आगम ग्रंथ लुप्त हो चुके हैं, कैवल्य ज्ञान प्राप्त होने पर सिद्ध- मुनियों को भोजन की आवश्यकता नहीं रहती और स्त्री शरीर से कैवल्य ज्ञान संभव नहीं; किंतु श्वेतांबर संप्रदाय ऐसा नहीं मानते हैं।

दिगंबरों की तीन शाखा हैं मंदिर मार्गी , मूर्तिपूजक और तेरापंथी, और श्वेतांबरों की मंदिरमार्गी तथा स्थानकवासी दो शाखाएं हैं। दिगंबर संप्रदाय के मुनि वस्त्र नहीं पहनते। 'दिग्' माने दिशा। दिशा ही अंबर है, जिसका वह ' दिगंबर '। वेदों में भी इन्हें 'वातरशना' कहा है। जबकि श्वेतांबर संप्रदाय के मुनि सफेद वस्त्र धारण करते हैं। कोई 300 साल पहले श्वेतांबरों में ही एक शाखा और निकली 'स्थानकवासी'। ये लोग मूर्तियों को नहीं पूजते। जैनियों की तेरहपंथी , बीसपंथी, तारणपंथी, यापनीय आदि कुछ और भी उपशाखाएं हैं। जैन धर्म की सभी शाखाओं में थोड़ा-बहुत मतभेद होने के बावजूद भगवान महावीर तथा अहिंसा, संयम और अनेकांतवाद में सबका समान विश्वास है।

भगवान महावीर के पश्चात इस परंम्परा में कई मुनि एवं आचार्य भी हुये है , जिनमें से प्रमुख हैं-

आचार्य पूज्यपाद (474-525)

श्री पूज्यपाद स्वामी एक महान आचार्य हुए हैं। श्री जिनसेन , शुभचन्द्र आचार्य आदि ग्रन्थकारों ने अपने-अपने ग्रन्थ में उन्हें बड़े आदर से स्मरण किया है।

यथा-

कवीनां तीर्थकृद्देव: किं तरां तत्र वण्र्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम्।।

जो कवियों में तीर्थंकर के समान थे और जिनका वचनरूपी तीर्थ विद्वानों के शब्द सम्बन्धी दोषों को नष्ट करने वाला है , ऐसे उन देवनन्दि आचार्य का कौन वर्णन कर सकता है ?

अपाकुर्वन्ति यद्वाच: कायवाक्चित्तसंभवम्।
कलंकमंगिनां सोऽयं देवनंदी नमस्यते।।

जिनके वचन प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त के सभी प्रकार के दोष को दूर करने में समर्थ हैं उन देवनन्दि आचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ अर्थात् श्री पूज्यपाद ने वैद्यक ग्रन्थ बनाकर काय सम्बन्धी दोष को दूर किया है , व्याकरण ग्रन्थ बनाकर वचन सम्बन्धी दोष को एवं समाधितन्त्र ग्रन्थ बनाकर मन सम्बन्धी दोष को दूर किया है।

इन पूज्यपाद स्वामी का जीवन परिचय, समय, गुरु परम्परा और इनके रचे हुए ग्रंथों का किंचित् विवरण किया जाता है

जीवन परिचय : श्री पूज्यपाद स्वामी पिता का नाम माधव भट्ट और माता का नाम श्रीदेवी था। ये कर्नाटक के कोले नामक ग्राम के निवासी थे और ब्राह्मण कुल के भूषण थे। इनका घर का नाम देवनन्दि था। ये एक दिन अपनी वाटिका में विचरण कर रहे थे कि उनकी दृष्टि सांप के मुख में फँसे हुए मेंढ़क पर पड़ी इससे उन्हें विरक्ति हो गयी और ये जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महामुनि हो गए। ये अपनी तपस्या के प्रभाव से महान प्रभावशाली मुनि हुए हैं। कथा में ऐसा वर्णन आता है कि ये अपने पैरों में गगनगामी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र में जाया करते थे। इनके विदेहक्षेत्र गमन का वर्णन प्रशस्ति के श्लोकों से भी स्पष्ट हो रहा है।यथा-

श्री पूज्यपादप्रतिमौषधद्र्धिर्जीयाद् विदेहजिनदर्शन-पूतगात्र:।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शप्रभावात्, कालायसं किल तदा कनकीचकार।।१७।।

जिनके अप्रतिम औषधि ऋद्धि प्रगट हुई थी, विदेह क्षेत्र के जिनेन्द्रदेव के दर्शन से जिनका शरीर पवित्र हो चुका था, ऐसे पूज्यपाद स्वामी एक महान मुनि हुए हैं। इन्होंने अपने पैर के धोये हुए जल के स्पर्श के प्रभाव से लोहे को सोना बना दिया था।

इस श्लोक से इनकी ऋद्धि विशेष का और विदेहगमन का स्पष्टीकरण हो रहा है। कथानकों में ऐसा भी आया है कि ये पूज्यपाद मुनि बहुत दिनों तक योगाभ्यास करते रहे। किसी समय एक देव ने विमान में इन्हें बैठाकर अनेक तीर्थों की यात्रा कराई। मार्ग में एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई अत: उन्होंने शान्त्यष्टक रचकर ज्यों की त्यों दृष्टि प्राप्त की।

आचार्य वीरसेन (790-825)

आचार्य जिनसेन (800-880) जैन सिद्धांत के प्रख्यात ग्रंथ 'षट्खंडागम' तथा 'कसायपाहुड' के टीकाकार आचार्य वीरसेन (सन् ७९२ से ८२३ ई.) इनके गुरु थे। क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी द्वारा सम्पादित 'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश ' में भी उल्लेख है कि आचार्य जिनसेन , धवला टीका के कत्ता श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य तथा उत्तरपुराण के कत्ता श्री गुणभद्र के गुरु थे और राष्ट्रकूट-नरेश जयतुंग एवं नृपतुंग, अपरनाम अमोघवर्ष (सन् ८१५ से ८७७ ई.) के समकालीन थे। राजा अमोघवर्ष की राजधानी मान्यखेट में उस समय विद्वानों का अच्छा समागम था।[१]

'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश' के संदर्भानुसार आचार्य जिनसेन आगर्भ दिगम्बर थे; क्योंकि इन्होंने बचपन में आठ वर्ष की आयु तक लंगोटी पहनी ही नहीं और आठ वर्ष की आयु में ही दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इन्होंने अपने गुरु आचार्य वीरसेन की , कर्मसिद्धांत-विषयक गंरथ 'षट्खंडागम' की अधूरी 'जयधवला' टीका को, भाषा और विषय की समान्तर प्रतिपादन-शैली में पूरी किया था और इनके अधूरे 'महापुराण' या 'आदिपुराण' को (कुल ४७ पर्व) जो 'महाभारत' से भी बड़ा है, इनके शिष्य आचार्य गुणभद्र ने पूरा किया था। गुणसेन द्वारा पूरा किया गया अंश या शेषांश उत्तरपुराण नाम से प्रसिद्ध है। पंचस्तूपसंघ की गुर्वावलि के अनुसार वीरसेन के एक और शिष्य थे-विनयसेन। आचार्य जिनसेन (द्वितीय) ने दर्शन के क्षेत्र में जैसी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है , वैसी ही अपूर्व मनीषा काव्य के क्षेत्र में भी प्रदर्शित की है।

बाहुबली गोमतेश्वर (981 AD)

जैन समुदाय के लोगो के बीच एक आदरणीय नाम है , वे जैन धर्म के पहले तिर्थंकार और ऋषभनाथ के बेटे थे। कहा जाता है की उन्होंने एक साल तक पैरो पर खड़े होकर ही स्थिर

तपस्या की थी इस समय उनके पैरो के आस-पास के काफी पेड़ भी बड़े हो गए थे। जैन सूत्रों के अनुसार बाहुबली की आत्मा जन्म और मृत्यु से परे थी , और हमेशा कैलाश पर्वत पर ही वे तपस्या करते थे। जैन लोग उन्हें आदर से सिद्ध कहते है।

गोमतेश्वर की मूर्ति उन्हें समर्पित होने की वजह से उन्हें गोमतेषा भी कहा जाता था। इस मूर्ति को गंगा साम्राज्य के मिनिस्टर और कमांडर चवुन्दराय ने बनवाया था , यह मूर्ति 57 फूट एकाश्म है, जो भारत के कर्नाटक राज्य के हस्सन जिले के श्रवनाबेलागोला पहाड़ी पर बनी हुई है। इस मूर्ति को 981 AD के दरमियाँ बनाया गया था। और दुनिया में यह सबसे विशाल मुक्त रूप से खड़ी मूर्ति है। वे मन्मथा के नाम से भी जाने जाते है।

आचार्य श्री मानतुंग जी (११००-११२०)

भक्तामर स्त्रोत आचार्य मानतुंग ग्यारहवीं सदी में भारत के मालवा प्रदेश पर राजा भोज का राज्य था।:आचार्य श्री मानतुंग दिगंबर जैन धर्म के वीतरागी नगन मुनी थे \वह प्रकांड विद्वान, तपस्वी, ओजस्वी तथा तेजयुक्त आभामंडल धारक नग्न मुनी थे , जो सदा सांसारिक सुखों से विमुक्त तथा सदा र्निलप्त भाव से स्वयं में मग्न रहते थे। उन्हें वह अन्य सभी दिव्य शक्तियॉ 'ऋद्धि सिद्धियॉ' प्राप्त थी। अपनी अणिमा तथा लघिमा ऋद्धि से शरीर को सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा विशाल से विशाल बना सकते थे। जिस प्रकार भगवान् हनुमान भौतिक से विमुक्त हो विचरण कर सकते थे। अपने शरीर से अनेक शरीर बना सकते थे ।उनके मत था की

भक्तामर-प्रणत-मौलिमणि-प्रभाणा,मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।

सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्।1।

जैन आचार्य के उल्लेख हैं कि वह आत्माएँ जो जप -तप प्रयत्न से अपने आभामंडल के रंगों को रत्नों और मणियों के समान द्युतिमान बनाती हैं। वह शुद्ध आत्माएँ रत्न और मणि के समान अजर , अमर अविनाशी - स्वयम भगवान् हो जाती हैं। आचार्य श्री के मत हैं कि भूमंडल पर रत्न और मणियाँ ही एकमात्र अक्षय रंगों के भण्डार हैं और साक्षात देव रूप है रंग ब्रह्यांड की आत्मा है। रत्न और मणि काल दिशा तथा पंच महाभूतों के निरंतर प्रर्वतन चक्र से मुक्त अजर-अमर होते हैं। इस भाँति चौबीस तीर्थकरों

के रंग अनंत दिव्य शक्तियों की द्योतक है। 'भक्तांबर स्त्रोत' अधिक जानकारी हेतु हमारा लक्ष भक्तामर पढ़े ।

गुप्त काल: ईसा की पहली शताब्दी में कलिंग के राजा खारावेल ने जैन धर्म स्वीकार किया। ईसा के प्रारंभिक काल में उत्तर भारत में मथुरा और दक्षिण भारत में मैसूर जैन धर्म के बहुत बड़े केंद्र थे। पांचवीं से बारहवीं शताब्दी तक दक्षिण के गंग , कदम्बु, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन राजाओं के यहां अनेक जैन मुनियों, कवियों को आश्रय एवं सहायता प्राप्त होती थी। ग्याहरवीं सदी के आसपास चालुक्य वंश के राजा सिद्धराज और उनके पुत्र कुमारपाल ने जैन धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया तथा गुजरात में उसका व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया।

मुगल काल :

इतिहास करो के मत है कि कि अकबर , जहांगीर, और शाहजहां: तीन सम्राटों के तहत शाही मुगल दरबार में संस्कृत मुख्य रूप से विकसित हुई इसका एक बहूत बड़ा रहस्य है । वैदिक संस्कृती का ब्राह्मण समाज सदा से सत्ता की चाटुकार - पूजारी रहा है और बदले में सत्ता के तमाम लाभ प्राप्त करता रहा है । मुग़ल काल का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों ने अपनी चाटुकारिता तथा लोभ के वश बादशाह अकबर को भी विष्णु का अवतार घोषित कर रखा था और बदले में अकबर ने ब्राह्मणों को न केवल जज़िया से मुक्त कर रखा था बल्कि उन्हें राजकीय संरक्षण भी दिया था. ।

ब्राह्मणों ने संस्कृत में रचित तत्कालीन कई रचनाओं में सिद्ध किया गया है कि अकबर विष्णु का अवतार था. अकबर के समर्थन में संस्कृत में लिखी गई एक रचना में अकबर की प्रशंसा में उसकी तुलना विष्णु के साथ की गई है. इस रचना का भावार्थ कुछ इस तरह है:

"जिस तरह से वेदों में ब्रह्म की व्याख्या जगत से परे और अपरिवर्तनशील की है , उसी तरह पृथ्वी के महान शासक अकबर ने गायों और ब्राह्मणों की सुरक्षा करने के लिए जन्म लिया है.. गायों की रक्षा हेतु भगवान विष्णु एक विदेशी परिवार में अकबर के रूप में अवतीर्ण हुए. ऐसे परिवार में, जो कि गायों और ब्राह्मणों को नुकसान पहुंचाना पसंद करते थे , जन्म लेने के बावजूद अकबर गायों और ब्राह्मणों के रक्षक बने इसलिए वह स्वयं भगवान विष्णु के अवतार

हैं." इसी के अनुरूप हिन्दू धर्म के भक्ति भाव से मुस्लिम वर्ग प्रभावित था । इसी के अनुरूप मुग़ल काल के कवि रसखान की एक सुंदर कविता है

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं गोकुल गाँव के ग्वालन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं बसेरो करौं मिल कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन।।

बादशाह अकबर

संस्कृत में नहीं कुछ व्यक्तिगत धार्मिक खोज के रूप में , अपने साम्राज्य में अपनी राजनीतिक संयोजक के लिए दिलचस्पी थी अकबर - पूर्वजों के बारे में थोड़ा जान लेना जरूरी है. विन्सेंट स्मिथ ने किताब यहाँ से शुरू की कि “अकबर भारत में एक विदेशी था. उसकी नसों में एक बूँद खून भी भारतीय नहीं था…. अकबर मुग़ल से ज्यादा एक तुर्क था” अकबर के सभी पूर्वज बाबर, हुमायूं, से लेकर तैमूर तक सब भारत में लूट , बलात्कार, धर्म परिवर्तन, मंदिर विध्वंस, आदि कामों में लगे रहे ।

अबुल फज़ल ने बादशाह अकबर के हरम के बारे में जाओ जानकारी दी है वह बहुत मार्मिक है- “अकबर के हरम में एक से एक सुंदर पांच हजार औरतें थीं और हर एक ओरत का अपना अलग घर था.” ये पांच हजार औरतें उसकी ३६ पत्नियों से अलग थीं. “शहंशाह के महल के पास ही एक शराब खाना बनाया गया था . वहाँ इतनी वेश्याएं इकट्ठी हो जाती थी कि उनकी गिनती करनी भी मुश्किल थी । यहाँ से दरबारी - अपनी पसंद के अनुसार इन नर्तकियों को अपने घर ले जाते थे. अगर कोई दरबारी किसी नयी लड़की को घर ले जाना चाहे तो उसको अकबर से आज्ञा लेनी पड़ती थी. कई बार दरबारीयों में नर्तकियों पसंद के लिए लड़ाई झगडा भी हो जाता था. ।

यहाँ सवाल यह पैदा होता है कि ये वेश्याएं इतनी बड़ी संख्य , कहाँ से आती थी ? और यह ओरते कौन थीं? आप सब जानते हैं कि इस्लाम में स्त्रियाँ परदे में रहती हैं , और फिर अकबर जैसे नेक मुसलमान को इतना तो ख्याल होगा ही कि मुसलमान औरतों से वेश्यावृत्ति कराना

गलत है. तो अब यह सोचना कठिन नहीं है कि ये स्त्रियां कौन थीं. । वास्तव ये वो स्त्रियाँ थीं जो लूट के माल में अल्लाह द्वारा मोमिनों के भोगने के लिए दी जाती थी , अर्थात हिन्दू काफिरों की हत्या करके उनकी लड़कियां, पत्नियाँ आदि. अकबर की सेनाओं के हाथ युद्ध में जो भी हिंदू स्त्रियाँ उनके हाथ लगती थीं , ये उसी की भीड़ मदिरालय में इक्कठी होती थी.और "जब भी कभी कोई रानी , दरबारियों की पत्नियाँ, या नयी लडकियां शहंशाह की सेवा में जाना चाहती थी तो पहले उसे अपना आवेदन पत्र हरम प्रबंधक के पास भेजना पड़ता था. फिर यह पत्र महल के अधिकारियों तक पहुँचता था और फिर जाकर उन्हें हरम के अंदर जाने दिया जाता अब यहाँ देखना चाहिए कि चाटुकार अबुल फजल भी इस बात को छुपा नहीं सका कि अकबर अपने हरम में दरबारियों, राजाओं और लड़कियों तक को भी महीने के लिए रख लेता था. पूरी प्रक्रिया को संवैधानिक बनाने के लिए इस धूर्त चाटुकार ने चाल चली है कि स्त्रियाँ खुद अकबर की सेवा में पत्र भेज कर जाती थीं! इस मूर्ख को इतनी बुद्धि भी नहीं थी कि ऐसी कौन सी स्त्री होगी जो पति के सामने ही खुल्लम खुल्ला किसी और पुरुष की सेवा में जाने का आवेदन पत्र दे दे ? वास्तिवकता यह है कि अकबर महान खुद ही आदेश देकर जबरदस्ती किसी को भी सुंदर ओरत को अपने हरम में रख उसका एक महीने तक सतीत्व नष्ट करता था.

रणथंभोर की संधि में अकबर महान की पहली शर्त यह थी कि राजपूत अपनी स्त्रियों की डोलियों को अकबर के शाही हरम के लिए रवाना कर दें यदि वे अपने सिपाही वापस चाहते हैं. । बैरम खान जो अकबर के पिता तुल्य और संरक्षक था , उसकी हत्या करके इसने उसकी पत्नी अर्थात अपनी माता के तुल्य स्त्री से शादी की . बादशाह अकबर अपनी रखैलों को अपने दरबारियों में बाँट देता था . औरतों को एक वस्तु की तरह बांटना और खरीदना अकबर महान बखूबी करता था. मीना बाजार जो हर नए साल की पहली शाम को लगता था, इसमें सब स्त्रियों को सज धज कर आने के आदेश दिए जाते थे और फिर अकबर महान उनमें से किसी को चुन लेते थे.

भारत में पिछले तेरह सौ सालों से इस्लाम मजहब के मानने वालों ने लगातार आक्रमण किये. मुहम्मद बिन कासिम और उसके बाद आने वाले गाजियों ने एक के बाद एक हमला करके, यहाँ लूटमार, बलात्कार, नरसंहार और इन सबसे बढ़कर यहाँ रहने वाले काफिरों को अल्लाह और उसके रसूल की इच्छानुसार मुसलमान बनाने का निक्रस्ट काम किया. । आज के अफगानिस्तान तक पश्चिम में फैला उस समय का भारत धीरे धीरे इस्लाम के शिकंजे में आने लगा. । आज के

Comment [VJ1]:

अफगानिस्तान में उस समय अहिंसक बौद्धों की निष्क्रियता ने बहुत नुकसान पहुंचाया क्योंकि इसी के चलते मुहम्मद के गाजियों के लश्कर भारत के अंदर घुस पाए. जहाँ जहाँ तक बौद्धों का प्रभाव था, वहाँ पूरी की पूरी आबादी या तो मुसलमान बना दी गयी या काट दी गयी. । जहां हिंदुओं ने प्रतिरोध किया, वहाँ न तो गाजियों की अधिक चली और न अल्लाह की. यही कारण है कि सिंध के पूर्व भाग में आज भी हिंदू बहुसंख्यक हैं । क्योंकि सिंध के पूर्व में राजपूत, जाट, आदि वीर जातियों ने इस्लाम को उस रूप में बढ़ने से रोक दिया जिस रूप में वह इराक, ईरान, मिस्र, अफगानिस्तान और सिंध के पश्चिम तक फैला था , अर्थात वहाँ की पुरानी संस्कृति को मिटा कर केवल इस्लाम में ही रंग दिया गया पर भारत में ऐसा नहीं हो सका, पर बीच बीच में लुटेरे आते गए और देश को लूटते गए. तैमूरलंग ने कत्लेआम करने के नए आयाम स्थापित किये ।

संत कबीर :संत कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ , जब भारतीय समाज और धर्म का स्वरुप अधंकारमय हो रहा था। भारत की राजनीतिक , सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाएँ सोचनीय हो गयी थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धमार्ंधता से जनता त्राहि- त्राहि कर रही थी और दूसरी तरफ हिंदूओं के कर्मकांडों, विधानों एवं पाखंडों से धर्म- बल का ह्रास हो रहा था। जनता के भीतर भक्ति- भावनाओं का सम्यक प्रचार नहीं हो रहा था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, समाज में वासना को प्रश्रय दे रहे थे। नाथपंथियों के अलखनिरंजन में लोगों का ऋदय रम नहीं रहा था। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्व केवल ऊपर के कुछ धनी- मनी , पढ़े- लिखे की बपौती के रुप में दिखाई दे रहा था। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की आवश्यकता समाज को थी, जो राम और रहीम के नाम पर आज्ञानतावश लड़ने वाले लोगों को सच्चा रास्ता दिखा सके। ऐसे ही संघर्ष के समय में, मस्तमौला कबीर का प्रार्दुभाव हुआ।

अकबर और जैन धर्म: बादशाह अकबर शुरू में कुछ समय जैन धर्म से अति प्रभावित रहा और उसने श्वेताम्बर जैन साधू से जैन धर्म सारभूत ज्ञान "देव दर्शन - सूर्य साधना " योग को अपनाया था तथा योग करने हेतु सूर्य के १०० नाम कंठस्थ याद किये थे । परन्तु अकबर की विलासता तथा भक्ति दर्शन के उपासक हिन्दू ब्राम्हणों - तथा मुगलों के प्रभाव में जैन धर्म का सांख्य योग " अहम ब्रहम्स्मी" ज्यादा दिन प्रभावी नही रहा । इसके साथ साथ भोगवादी ब्राम्हण समाज शुरू से ही जैन पद्धति का विरोधी रहा है और उनकी निति हमेश चाटुकार रही है इसलिए भोगवादी क्रष्ण भक्ति के प्रभाव में अकबर ने जैन विद्वानो विचारकों से पूछा की क्या वह

भक्ति योग" भगवान् कृष्ण के भक्ति योग से सहमत है ? और यदि नही तो वह दरबार से दखल किये जाते हैं ।..दरबार दखल का मतलब होता है सीधा सीधा - देश द्रोह । जैन धर्म के विद्वान सिखों की भांति बहादुर नही थे i इसलिए जैन विद्वान अकबर के प्रशन का उत्तर नही में नही दे पाए और राज से दखल होने के भय से जैन विद्वानों ने अकबर बादशाह को आश्वासन दिया कि वे देवी देवताओं -भगवान में विश्वास करते है और यही से जैन धर्म का साहित्य तथा मन्त्र अपनी ज्ञान गरिमा खो कर देवी ब्राम्हणों द्वारा प्रेरित भक्ति भाव से देवताओं से वरदान / मागने का उपक्रम बन गये। उद्हारणत:

जैन महा मन्त्र णमोकार- जैन धर्म का दो पदों वाला णमोकार महामंत्र आत्म चेतना प्रदाता साधक को सूक्ष्म लोक - सूर्य यात्रा की शक्ति प्रदाता शब्द शक्ति का अनुपम ज्ञान भी मुगल काल की कट्टरता के प्रभाव में देवो- देवताओं साधू संतो को नमस्कार करने का मन्त्र बन गया । वर्तमान में हो रहे सभी णमोकार महामंत्र के आयोजन मुग़ल काल काल में लिखे गए जो सर्वथा अज्ञानता - से भरपुर है जिनपर मुग़ल काल की क्रूरता का छाया है। विस्तरत जानकारी हेतु हमारा लेख "महामंत्र णमोकार पढ़े।

देव दर्शन स्तोत्र - जैन धर्म का देव दर्शन स्तोत्र विशुद्ध साक्षात् देव- सूर्य देव ' दर्शन का विज्ञान दिव्य ज्ञान- दिव्य शक्ति प्राप्त करने का क्रिया योग मुगल काल की कट्टरता के प्रभाव में मन्दिर में जाकर प्रीतिमा दर्शन के साथ अर्घ चढाने की किर्या बन गई।

जिसे आज श्री हीरा रत्न माणिक्य सुन गजिंग के नाम से प्रचार प्रसार कर रहे है वह विज्ञान

वर्तमान में प्रचलित मन्दिर में जाकर पाषण मूर्तियों का दर्शन करने की प्रथाए मुगल काल में शरू की गई थी । जो आज भी प्रचलित है । जबकि मंदिर में जाकर देव दर्शन - से दिव्य शक्तिया - जीवन उर्जा नही मिलती। अधिक जानकारी हेतु ------देव दर्शन लेख पढ़े

भक्तामर स्तोत्र : मुग़ल काल से पूर्व आचार्य मानतुंग ने जैन धर्म का ससार भुत का खुलासा राजा भोज के दरबार में एक विचित्र परिस्थिति में भक्तामर स्तोत्र के माध्यम से किया था । जैन धर्म एक अतिशय ज्ञान है जाओ आत्म चेतन कर जीवात्मा को दिव्य ज्ञान दिव्य शक्ति प्राप्त प्रदाता है ।आज इस विज्ञान का हिंदी रूपान्तर जो मुग़ल के जैन दरबारियों द्वारा किया गया उसमे जैन धरम का सच्चा ज्ञान प्राय विलुप्त है और आज भक्तामर स्तोत्र भक्ति भाव से

देवी देवताओं से वरदान मागने का उपक्रम रह गया है । भक्तामर स्तोत्र “सुरनत मुकूट रत्न छवि करे. अन्तर पाप - तीमिर सब हरे i जैसे भक्तामर स्तोत्र के हिंदी रूपान्तर जो मुग़ल के जैन दरबारियों द्वारा किया गया जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है और जैन धर्म का उपहास है ।अधिक जानकारी हेतु हमारा----------- भक्तामर लेख पढ़े
मुगल काल में संस्कृत : ग्रंथों को फारसी -मुगल में अनुवाद किया जा रहा था इस अनुवाद करने की विधि थी कि ब्राह्मण , संस्कृत पाठ मौखिक रूप से पढ़ेगा तथा उसकी हिन्दी करेगा , और फिर मुगलों फारसी में अनुवाद लिखना होगा। जैन और ब्राह्मण को समान रूप से इसके लिए मुगलों सहायता करते थे । अत: संस्कृत से हिंदी करने के समय जैन धर्म का सच्चा ज्ञान भक्ति योग की बली चढ़ गया । और जैन धर्म के सिद्धांत विकर्त हो गये जैसे जैन धर्म का महा मन्त्र णमो - नमो बन गया जिससे जैन धर्म की आत्मा सहज ही शूली पर चढ़ गयी ।

ब्राह्मण मुगल शाही परिवार के लिए संस्कृत आधारित कुंडली भी बनाते थे । इस प्रकार धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म को भक्ति योग -में परिवर्तित कर दिया और वस्तिकता यह है की हिन्दू धर्म का प्राय सभी साहित्य भक्ति योग - में दान - क्रपा मांगना ही धर्महै उसी के अनुरूप की आज हिन्दू धर्म की आरती है

ॐ जय जगीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे

ॐ जय जगदीश हरे जो ध्यावे फल पावे दु:ख विनशे मन का

सुख सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तन का ॐ जय जगीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे

उपरोक्त आरती दयाकर मांगने से प्रेरित है जबकि वैदिक संस्कृति में गायत्री शक्ति, ज्ञान, पवित्रता तथा सदाचार का प्रतीक मानी जाती है। माता गायत्री की श्रीमद् भागवत पुराण की आरती इस प्रकार है:

आरती अतिपावन पुराण की |धर्म - भक्ति - विज्ञान - खान की || टेक ||
महापुराण भागवत निर्मल |शुक-मुख-विगलित निगम-कल्ह-फल ||
परमानन्द-सुधा रसमय फल |लीला रति रस रसिनधान की || आरती०

कलिमल मथनि त्रिताप निवारिणी |जन्म मृत्युमय भव भयहारिणी ||
सेवत सतत सकल सुखकारिणी |सुमहैषधि हरि चरित गान की || आरती०

विषय विलास विमोह विनाशिनी |विमल विराग विवेक विनाशिनी ||
भागवत तत्व रहस्य प्रकाशिनी |परम ज्योति परमात्मा ज्ञान को || आरती०

परमहंस मुनि मन उल्लासिनी |रसिक ह्रदय रस रास विलासिनी ||
भुक्ति मुक्ति रति प्रेम सुदासिनी |
कथा अकिंचन प्रिय सुजान की || आरती०

बादशाह औरंग जैब :

जैसा कि सर्व विदित है, कि औरंगजेब के शासन के दौरान संस्कृत मुगल शाही जीवन का एक प्रमुख हिस्सा नहीं रह गई थी । क्योंकि 17 वीं सदी के दौरान , संस्कृत धीरे-धीरे हिन्दी को रास्ता दे रही थी । उस समय उपमहाद्वीप भारत में एक व्यापक साहित्यिक बदलाव आ गया था, । औरंगजेब ने दारा शिकोह मुगल सिंहासन के लिए हराया। दारा शिकोह 1640 और 1650 के दौरान संस्कृत सांस्कृतिक आदान-प्रदान की एक श्रृंखला में लगा हुआ था। बादशाह औरंग जैब एक क्रूर कट्टर शासक था उसने अपने ही बाप को कैद कर तथा भाई की हत्या कर 1658 में तख्त कब्जाया था। उसने 48 साल तक भारत वर्ष पर हकुमत की । बादशाह औरंग जैब ने अपनी तलवार के बल पर असंख्य हिन्दुओं को मुस्लिम मजहब मंजूर करवाया और जिन लोगों ने मुकालफत की उनके भरे बाजार में सिर कटवा दिये गयें जिसमें सिक्ख धर्म के दसवें गुरु - गुरु तेग बहादुर की कुर्बानी उल्लेखनिय है । यह उल्लेखनिय है कि सिक्ख धर्म के दसवें गुरु - गुरु तेग बहादुर चादनी चैक के चोराहे पर मुस्लिम महजब स्वीकार न करने के कारण फासी दे दी गयी। आज यह चौक भाई मति दास के नाम से जाना जाता है. बादशाह औरंग जैब फरमान जारी कर रखा था कि नित्य प्रतिकिन सुबह एक गाडी जनेउ धारी - सूर्य उपासको के सर (गर्दन) काटकर उसे पैश की जाय।।

बादशाह औरंग जैब ने अनेक जैन - हिन्दु धर्म के मंदिरों धर्म स्थलों को ध्वंस किया। उस समय जैन - हिन्दु धर्म के अनुयायी एक खौप जुदा जिन्दगी जी रहे थे एसी विकट परिस्थितियों में भारत मूल की जैन - वैदिक संस्कृति जो मानव जीवन को सफल बनाने वाली संस्कृति विकृत होने से भला कैसे बच सकती थी ।

सिख धर्म :गुरु नानक ने जो इस्लाम धर्म की क्रूरता - धर्म परिवर्तन तथा ब्रम्हामण वाद की कुरीतियों से सरक्षण करने हेतु जाओ पंथ चलाया , वही सिख-पंथ के नाम से प्रसिद्द हुआ....तत्कालीन संत धारा के अनुसार ,नानक भी निराकारवादी थे ....वे अवतारवाद ,जांत-पांत और मूर्ति-पूजा को नहीं मानते थे....उनका मत जहाँ एक ओर वेदान्त पर आधारित है ,वही दूसरी ओर ,वह तसव्वुफ के भी कई लक्षण लिए हुए है .....गुरु नानक की उपासना के चरों अंग (सरन-खंड ,ज्ञान-खंड,करम-खंड और सच-खंड)सूफियों के चार मुकामात (शरीअत ,,मार्फ़त,उकबा और लाहूत)से निकले है ,ऐसा विद्वानों का मानना है .....गुरु नानक और शेख फरीद के बिच गाढ़ी मैत्री थी ,इसके भी प्रमाण मिलते हैं.....

गुरु साहब की वेश भूषा और रहन सहन सूफियों जैसी थी ....इसलिए एक अनुमान यह भी चल पड़ा की नानक पर मुस्लिम प्रभाव अधिक था.....इस अनुमान के समर्थन में यह भी कहा जाता है की गुरु नानक के शिष्य केवल हिंदू ही नहीं , बहुत से मुस्लमान भी हुए थे .....

परन्तु और सिख धर्म ग्रंथो में देखा जाया तो " रहतनामा " में गुरु की स्पस्ट आज्ञा मिलती है की खालसा धर्म(शुद्ध धर्म)हिंदू और मुस्लिम , दोनों धर्मो से अलग है .....उनकी इस आज्ञा को सही मानना चाहिए क्यूंकि अगर नानक हिदुत्व या इस्लाम से पूर्णरूप से संतुष्ट होते तो उन्हें एक नए पंथ निकलने की चिंता ही नहीं होती .....

सिख धर्म आरम्भ से ही , प्रगतिशील रहा है .....जांत-पांत ,मूर्ति-पूजा और तीर्थ के साथ वह सति-प्रथा ,शराब और तम्बाकू का भी वर्जन करता है .....इस धर्म ने परदे को बराबर बुरा समझा.....कहते है ,तीसरे गुरु अमरदास से एक रानी मिलने को आई ,किन्तु ,वह परदे में थी ...इसलिए गुरु ने उनसे मिलने से इंकार कर दिया

यह धर्म आरम्भ से ही व्यभारिक भी रहा है और जिस वैराग्य को गुरु उच्च जीवन के लिए जरुरी मानते थे .उसे वे गृहस्थों पर जबरदस्ती लड़ने के विरूद्ध थे .....खान -पण में खालसा धर्म में वैष्णवी कट्टरता कभी नहीं रही .....

विदेशीय मूल के मुस्लिम- अग्रेजों की गुलामी सहनी पडी। विदेशीय मूल के मुस्लिम- अग्रेज दोनो ही वैदिक जैन संस्कृति के विरोधी थे।

आचार्य रजनीश : ओशो का मूल नाम चन्द्र मोहन जैन था। वे अपने पिता की ग्यारह संतानो में सबसे बड़े थे। उनका जन्म मध्य प्रदेश में रायसेन जिले के अंतर्गत आने वाले कुचवाडा ग्राम में हुआ था। उनके माता पिता श्री बाबूलाल और सरस्वती जैन , जो कि तेरापंथी जैन थे , ने उन्हें अपने ननिहाल में ७ वर्ष की उम्र तक रखा था। ओशो के स्वयं के अनुसार उनके विकास में इसका प्रमुख योगदान रहा क्योंकि उनकी नानी ने उन्हें संपूर्ण स्वतंत्रता , उन्मुक्तता तथा रुढ़िवादी शिक्षाओं से दूर रखा।

ओशो रजनीश (११ दिसम्बर १९३१ - १९ जनवरी १९९०)

ओशो शब्द लैटिन भाषा के शब्द ओशोनिक से लिया गया है , जिसका अर्थ है सागर में विलीन हो जाना। १९६० के दशक में वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से एवं १९७० -८० के दशक में भगवान श्री रजनीश नाम से और ओशो १९८९ के समय से जाने गये। वे एक आध्यात्मिक गुरु थे , तथा भारत व विदेशों में जाकर उन्होने प्रवचन दिये।

वे दर्शनशास्त्र के अध्यापक थे। उनके द्वारा समाजवाद ,महात्मा गाँधी की विचारधारा तथा संस्थागत धर्म पर की गई अलोचनाओं ने उन्हें विवादास्पद बना दिया। वे काम के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण के भी हिमायती थे जिसकी वजह से उन्हें कई भारतीय और फिर विदेशी पत्रिकाओ में "सेक्स गुरु" के नाम से भी संबोधित किया गया।

ओशो ने सन्यास को एक नई पहचान दी i सन्यांस पहले कभी भी इतना समृद्ध न था जितना आज ओशो के संस्पर्श से हुआ है। । उनकी नजर में सन्यासी वह है जो अपने घर-संसार , पत्नी और बच्चों के साथ रहकर पारिवारिक , सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए ध्यान और सत्संग का जीवन जिए। उनकी दृष्टि में वह एक सच्चा संन्यास है जो इस देश में हजारों वर्षों से प्रचलित है। उनका मानना था कि जिसने घर-परिवार छोड़ दिया, भगवे वस्त्र पहन लिए, चल पड़े जंगल की और वह जीवन से भगोड़ापन है , पलायन है। यह सन्यास आसान था कि आप संसार से भाग खड़े हुए तो संसार की सब समस्याओं से मुक्त हो गए। क्योंकि समस्याओं से कौन मुक्त नहीं होना चाहता ? और जो जो लोग संसार से भागने की अथवा संसार को त्यागने की हिम्मत न जुटा सके, मोह में बंधे रहे, उन्हें त्याग का यह कृत्य बहुत महान लगने लगा, वे ऐसे संन्यासी की पूजा और सेवा करते रहे और सन्यास के नाम पर पर निर्भरता का यह कार्य चलता रहा :

सन्यासी अपनी जरूरतों के लिए संसार पर निर्भर रहा और तथाकथित त्यागी भी बना रहा। लेकिन ऐसा सन्यास आनंद न बन सका , मस्ती न बन सका। दीन-हीनता में कहीं कोई प्रफुल्लता होती है? धीरे-धीरे सन्यास पूर्णतः सड़ गया। सन्यास से वे बांसुरी के गीत खो गए जो भगवान श्रीकृष्ण के समय कभी गूंजे होंगे-सन्यास के मौलिक रूप में। अथवा राजा जनक के समय सन्यास ने जो गहराई छुई थी , वह संसार में कमल की भांति खिल कर जीने वाला सन्यास नदारद हो गया। और एक अर्थ में आसान भी है- भगवे वस्त्रधारी संन्यासी की पूजा होती थी। उसने भगवे वस्त्र पहन लिए , उसकी पूजा के लिए इतना पर्याप्त है । दरअसल वह उसकी नहीं, उसके वस्त्रों की पूजा थी।

ओशो ने हर एक पाखंड पर गहरी चोट की। सन्यास की अवधारणा को उन्होंने भारत की विश्व को अनुपम देन बताते हुए सन्यास के नाम पर भगवा कपड़े पहनने वाले पाखंडियों को खूब लताड़ा। ओशो ने सम्यक सन्यास को पुनरुज्जीवित किया है। और संसार में लाखो लोग सच्चे सन्यासी है ओशो ने पुनः उसे बुद्ध का ध्यान , कृष्ण की बांसुरी, मीरा के घुंघरू और कबीर की मस्ती दी है।

ओशो सिद्धाँत : ओशो के प्रारंभिक दिनो में जब वे आचार्य रजनीश के नाम से जाने जाते थे , किसी पत्रकार ने उनसे उनके दस आधारभूत सिद्धाँतों के बारे में पूछा। उत्तर में ओशो ने कहा ये मुश्किल विषय है क्योंकि वे किसी भी तरह के जड़ सिद्धाँत या नियम की विरुद्ध रहे हैं , परन्तु सिर्फ मजाक के लिए हल्के तौर पर वे निम्न हो सकते हैं

- कभी किसी की आज्ञा का पालन नहीं करे, जब तक के उसकी सम्ग्यता आपके भीतर से भी नहीं आ रही हो । ईश्वर कोई अन्य नहीं हैं, स्वयं जीवन (अस्तित्व) के। सत्य आपके अन्दर ही है, उसे बाहर ढूंढने की जरुरत नहीं है।
- *प्रेम ही प्रार्थना हैं। शून्य हो जाना ही सत्य का मार्ग है। शून्य हो जाना ही स्वयं में उपलब्धि है।
- जीवन यहीं है अभी हैं।. जीवन होश से जियो। तैरो मत - बहो।

- *प्रत्येक पल मरो ताकि तुम हर क्षण नवीन हो सको। उसे ढूंढने की जरुरत नहीं जो कि यही हैं, रुको और देखो।
- *दर्शन = जब वाणी मौन होती है, तब मन बोलता है... जब मन मौन होता है, तब बुद्धि बोलती है... जब बुद्धि मौन होती है , तब *आत्मा बोलती है... जब आत्मा मौन होती है , तब परमात्मा से साक्षात्कार होता है।
- "*धार्मिक व्यक्ति की पुरानी धारणा यह रही है कि वह जीवन विरोधी है। वह इस जीवन की निंदा करता है, इस साधारण जीवन की - वह इसे क्षुद्र , तुच्छ, माया कहता है। वह इसका तिरस्कार करता है। मैं यहाँ हूँ, जीवन के प्रति तुम्हारी संवेदना व प्रेम को जगाने के लिये
- *जब वाणी मौन होती है, तब मन बोलता है... जब मन मौन होता है , तब बुद्धि बोलती है... जब बुद्धि मौन होती है , तब आत्मा बोलती है... जब आत्मा मौन होती है , तब परमात्मा से साक्षात्कार होता है।

वर्तमान जैन धर्म : वर्तमान का जैन धर्म अनादि काल में जैन धर्म से विमुख है । प्राचीन काल में जैन तीर्थकरों सिद्धो तथा असख्य मुनियों सात शु ाद्धयों युक्त निर्वाण सिद्ध क्षेत्र पर पहुच कर सूर्य जप तप कर मोक्ष पधारे । प्राचिन युगों में जैन धर्म के मुनियों की जीवन की सभी आवश्यकताऐं सूर्य साधना से पूरी होती थी अर्थात वह पेड पौधो की भॉती सूर्य किरणों से अपना आहार लेते थे तथा वह सभी मुनी सूर्य तप से सर्दी गर्मी वर्षा के प्रकोप से मुक्त रहते थे , जैन तप सूर्य देव दर्शन से उन्हें ८४ रिद्धि सिद्धियों प्राप्त होती थी और जैन धर्म का सुस्कृत सभ्य समाज देव दर्शन - सूर्य उपासना योग तथा दस लक्षण धर्म पालन कर अपनी शारिरीक आवश्यकताओं - भूख प्यास. र्सदी गर्मी आरोग्यता , दिव्यता आयु मुक्त शरीर प्राप्त कर परम सुख अवस्था में शरीर त्याग कर दैवत्व प्राप्त करते थे।

शास्त्रिय उल्लेख हैं कि अनादि काल में सभी महापरुषों ने देव दर्शन - सूर्य उपासना कर अपने जीवन अनंत शक्ति, अनंत बल, अनंत रुप, तथा सहज दिव्य शक्ति प्राप्त की जिसके सुंदर प्रकरण रामायण - महा भारत ग्रंथो में मिलते है । उस समय साधु या श्रावक समाज ' सूर्य

किरणों से अपना आहार लेने मे असमर्थ होते थे उनको यह निर्देश था कि वह अपना आहार सूर्यास्त से पूर्व ही ले ले।

वर्तमान जैन धर्म की पूजा पद्दति ६००- ७०० वर्ष पुरानी है यह पद्दति में मुग़ल काल में जैन धर्म के लोगो ने अपनी जान बचने के लिए बनाई गयी । मन्दिर में छुपकर सूर्य दर्शन -तथा - प्रतिकात्मक मूर्ति दर्शन, अन्य धर्मो के सामान देव को जल चढ़ाना " -प्रक्षाल -जलाभिषेक" तथा सूर्य देव के नाम पर मन्दिरो में स्थापित पत्थर की मुर्तिया के दर्शन - द्रव्य चढ़ाना । मुर्तीयो को देव मानना - तथा उनकी - दर्शन कर भौतिक लाभों के वरदान मागने की पद्धति यह सभी प्रकरण जैन धर्म के सिधांत अनुरूप नही है।

जैन धर्म की दर्शन पद्धतियों का पिछले ६०० -७०० वर्षो से शुद्धिकरण नही हुवा है और यह परिवर्तन युग है और यही उपयुक्त समय है जबकि हम अपनी अज्ञानता अन्धविश्वाश - मुगल काल के भय से छुटकारा पा ले

जैन पद्दति के अनुरूप ही हिन्दू धर्म में सूर्य को जल देना ६००-७०० वर्ष पुरानी डरे हुवे साधको की छुप छुप कर साधना करने की पद्दति हैं. । यह हमारा सोभाग्य है की सूर्य दर्शन की प्राचीन पद्धति को बिहार प्रदेश में छट पूजा के नाम से संजोकर रखा गया है।

यह एक गहर गंभीर विषय है कि वर्तमान समय में भी देव दर्शन - सूर्य उपासना योग जो मानव मात्र शारिरीक आवश्यकताओं - भूख प्यास. सर्दी गर्मी आरोग्यता , दिव्यता आयु मुक्त शरीर प्राप्त कर परम सुख अवस्था में शरीर त्याग कर दैवत्व प्राप्त करने का सच्चा ज्ञान है

इस विषय का सबसे दुखद पहलू यह है कि वर्तमान प्रचलित पद्धति ठगो - झुटे पंडितों की धन अर्जित करने प्रवति से लिप्त भृष्ट पद्धति है। आज यह भृष्ट पद्धति आगम -रिती -रिवाज के रुप में प्रचलित है जिसमें अनादि काल में वैदिक संस्कृति के देव दर्शन - सूर्य उपासना योग से मानव मन्त्र शारिरीक आवश्यकताओं - भूख प्यास. सर्दी गर्मी आरोग्यता , दिव्यता आयु मुक्त शरीर प्राप्त कर परम सुख अवस्था में शरीर त्याग कर दैवत्व प्राप्त करने की कला का सर्वथा अभाव है । इस विषय का सबसे दुखद पहलू यह है कि इसके उपरान्त ठगो - झुटे पंडितों की

धन अर्जित करने प्रवति के प्रभाव ने भारतिय संस्कृति को भृष्ट से भृष्टतर बना दिया। आज इस भृष्ट पद्धति आगम -रिती -रिवाज के रुप में प्रचलित है और हम यह जानकर की वर्तमान की ढो रहे है। अतः यह जानना अति आवश्यक है कि वह भृष्ट पद्धति आगम -रिती -रिवाज क्या है।

मेरा यह सविनय निवेदन है की युग परिवर्तन हो रहा है और यही उचित समय है जबकि जैन धर्म के विद्धवानो को अपने "अपने मस्तिष्क के आराम कोष अर्थात -भेड चाल" से बहार आकर जैन धर्म की सच्चे ज्ञान को प्रचार प्रसार करे और अपने जीवन को धन्य बनाए ।

लेख में अशुद्धि के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ सुझाव आमंत्रित है